P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-3* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

अभिराज जी की कथाओं में धार्मिक सन्दर्भ

अशोक कंवर शेखावत
सहायक आचार्य,
विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
झालावाड़, राजस्थान

सारांश

अभिराज राजेन्द्र मिश्र किसी ऐसे धर्म अथवा पंथ के पक्षधर नहीं है जो कर्महीनता एवं पराश्रयता को पोषित करें। कवि की दृष्टि में कर्म ही धर्म का प्राण तत्व है। सम्पूर्ण सृष्टि कर्ममयी है। पलायन मुक्ति का मार्ग कदापि नहीं हो सकता। धर्म न तो कर्म से विरत करता है और न ही सीमाओं एवं वर्गीकरण का आधार बन सकता है। धर्म अद्वैत की स्थापना करता है। परमशक्ति से उद्भूत समस्त शक्तियों में अभेद की अवधारणा ही धर्म का वास्तविक स्वरूप है। सामयिक सन्दर्भों में जो धर्म का स्वरूप दिखाई देता है वह धर्म की भ्रामक व्याख्याओं का नकारात्मक परिणाम हैं। धर्म के नाम पर हिंसा, आतंक, उग्रता, वर्गभेद, वर्गसंघर्ष आदि विकृतियां धर्म में पाखण्ड, एवं आडम्बर का परिणाम है। ऐसी स्थिति में शास्त्रों में प्रतिपादित धर्म के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या किया जाना सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। अपनी सामाजिक परिवेष की कथाओं के पात्रों के मुख से कवि ने सर्वत्र धर्म के यथार्थ स्वरूप को प्रतिपादित करवाया है। कवि अभिराज जी ने निश्चित ही धर्म की यह चेतना लोकहित साधने में सक्षम रही हैं।

मुख्य शब्द : ध्रियते, आत्मालोचन, नैमित्तिकंच, क्लीबं, त्रिगुणात्मा, नैष्कर्म्यं, ध्वजोच्छय, मोहविद्धो, विद्वेक्षि, विश्ववारा, रजोजुट्, स्पृक्, निसर्गः, विमिर्ममे, सङ्गोऽस्त्वकर्मणि, पंचयज्ञाः त्वदुत्थापितं

प्रस्तावना

धार्मिक पद धर्म पद से ठक् प्रत्यय से निष्पन्न है जिसका तात्पर्य है धर्म से युक्त। धर्म पद 'ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा' अर्थ में धृ धातु से मन् प्रत्यय से निष्पन्न होता हैं। संसार को धारण करने वाले अथवा संसार की सत्ता के आधारभूत गुण धर्म कहलाते हैं।

धर्म समाज की आत्मा है, प्राण है, जीवनधारा है, आत्मालोचन है, जीवन की सार्थकता है, कर्म की सार्थकता है। धर्महीन जीवन पलायन की ओर प्रवृत्त करता है। कविवर की दृष्टि में निष्काम कर्मयोग ही वीरों का मार्ग है। पलायन, कायरों द्वारा चुना गया विकल्प है। धर्म के इसी स्वरूप को विस्तारपूर्वक अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास कविवर ने किया है। हर्ष के सनातन वैदिक धर्म का तिरस्कार कर बौद्धधर्म का पक्षधर होने पर बाणभट्ट प्रतिपादित करते है कि सनातन वैदिक धर्म ही सांसारिक कल्याण का मार्ग है, बुद्ध का मार्ग पलायन का मार्ग है। स्वप्नदर्शन के रूप में बाणभट्ट की अनकही आत्मकथा कविवर की स्वयं की चिन्तनधारा एवं दृष्टिकोण है। ईश्वर, ब्राह्मणधर्म एवं वेदनिन्दा कविवर के लिए असहनीय है–'न सहिष्ये त्वत्कृतां वेदनिन्दाम्। न सहिष्ये त्वदुत्थापितं नित्यं नैमित्तिक×च ब्राह्मणधर्मविद्वेषम्।'[1]

बौद्धधर्म का जन्म वैदिक कर्मकाण्ड के विरोध में हुआ है। बौद्ध धर्म वेदों की निन्दा करता है। जबकि वेद अथवा सनातन धर्म, तर्क, विज्ञान एवं पर्यावरणीय चिन्तन पर आधारित ज्ञान का अवतरण है। वेद ईश्वरीय वरदान है। यदि इसमें कोई विकार भी आया है तो मनुष्यकृत भ्रामक व्याख्याओं के परिणामस्वरूप आया है। वेद कर्म का मार्ग है, सन्तुलन का मार्ग है, सम्पूर्ण ज्ञान का कोष है। वेदनिन्दक नास्तिक है।

तथागत का मार्ग पलायनवाद का मार्ग है, कायरता का मार्ग है, कर्महीनता का मार्ग है, दायित्व–निवृत्ति का मार्ग है, पुरूषार्थ हीनता का मार्ग है। जंगल में छिपकर संसार की रक्षा नहीं हो सकती। संसार की रक्षा संसार में रहकर ही हो सकती है। वे कहते है– 'हन्त, कियदुपहासास्पदमिदं तथ्यम्? यस्य संसारस्य रक्षा काम्यते, तत एवं पलायनं क्रियते? संसारं परित्यज्य संसारस्य रक्षा? समरं विहाय समरविजयः? दायित्वं विहाय दायित्वपूर्तिः?'[2]

कवि कहते हैं कि जिन चार आर्यसत्यों की बात सिद्धार्थ करते है, वे आर्यसत्य अधम प्राणियों से लेकर विद्वज्जन तक सभी जानते हैं। ये चारो आर्यसत्य वेदोपनिषदों में कहे गए हैं। तापत्रय का निवारण सांख्यदर्शन में पहले

से ही उपस्थित है। जिस अज्ञान निवृत्ति की बात सिद्धार्थ करते है वह वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद में निहित है। दुःखमुक्ति के उपाय समस्त ऋषिमुनियों ने बताए हैं। वैदिकधर्म अथवा सनातन धर्म में सम्पूर्ण ज्ञान निहित है। पलायनवाद इस लोक एवं परलोक दोनो की दुर्गति करता है।

शोध का उद्देश्य

समकालीन सन्दर्भों में निजि स्वार्थों के कारण धर्म की स्वार्थगत भ्रामक व्याख्याओं एवं प्रचार के कारण नई पीढ़ी धर्म के नकारात्मक स्वरूप को देख रही है। सम्प्रदाय व आडम्बर धर्म के पर्याय हो गए हैं। युवा पीढ़ी व समाज को बचाए रखने के लिए तथा सामाजिक सद्भाव एवं राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के लिए धर्म की सत्य स्वरूपा व्याख्या अनिवार्य हैं। कवि के दृष्टिकोण से धर्म को समझने में सहायता होगी तथा तब धर्म तोड़ने का नहीं जोड़ने का आधार बन सकेगा। इसी लक्ष्य को लेकर यह शोध प्रस्तुत किया गया है। आशा है जनकल्याण का यह कार्य सार्थक हो सकेगा।

संसार से भागकर वनों में भ्रमण एवं आत्ममुक्ति के प्रयास को कविवर नही मानते। सिर मुंडवा कर पृथ्वी पर भार स्वरूप, सांसारिक दायित्व–निर्वहन से भागे, हजारों निरर्थक परजीवी मनुष्यों को सामान्य लोग क्यों ढोने का काम करें? जो लोककल्याण का कार्य नही करते वे धर्म का नहीं, अधर्म का मार्ग अपना रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भी वेदान्त के उस स्वरूप का समर्थन कभी नहीं किया जिसमें संसार से पलायन कर आत्ममुक्ति का प्रयास किया जाए। परोपकार के लिए पशुवत जीवन भी जीना पड़े तो भी वह धर्म है। संसार में रहकर सम्पूर्ण संसार का कल्याण ही धर्म है। क्योंकि कहा भी गया है –

'अयं निज परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।'[3]

कृषि प्रधान जिस देश में आबालवृद्ध पसीना बहाते है, वहां निर्वाण एवं मोक्ष की कामना करने वाले हृष्ट–पुष्ट मनुष्य बिना परिश्रम किए स्वादिष्ट भोजन करें, यह कैसा धर्म है? ये कैसा न्याय है? इसका क्या औचित्य है? पशुपक्षी भी मेहनत करके अपना पेट भरते हैं तो ऐसा धर्म किस काम का जो पराश्रित होना सिखाता है। कवि कहते हैं कि हमारे शास्त्रों ने सदैव हमें कर्म का उपदेश दिया है, वे कहते है –

'अहो, यस्मिन् कर्मयोगपक्षधरे राष्ट्रे समुदघोषयन्त्युपनिषदः कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा इति। योगेश्वरो भगवान्मधुसूदनोऽपि नियतं कुरू कर्म त्वमित्यादि यत्र समुपदिशति ।'[4]

अभिराज राजेन्द्रमिश्र ऐसे किसी धर्म, सम्प्रदाय अथवा पंथ को अनुकरणीय नहीं मानते, जो समाज को पुरुषार्थहीन कर दे, सांसारिक कर्मों से विमुख कर दें, संसार को पराश्रयी, परोपजीवी एवं परमुखापेक्षी बना दे तथा सम्पूर्ण दायित्वों से मुक्त कर दे। सांसारिक कर्मो से निवृत्ति निर्वाण नहीं है, अपितु दायित्व निर्वहन में ही निवृत्ति है। कवि की दृष्टि में जब यह सम्पूर्ण सृष्टि कर्ममयी है। देवता, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथ्वी आदि सब ही गतिमय है। गति अथवा कर्म ही सृष्टि के अस्तित्व का रहस्य है। वे कहते हैं–

'धिक्तं धर्मं, धिग्धिक्तं सम्प्रदायं यस्समाजं क्लीबं विदधाति, यो लोकं कर्मपराङ्मुखं कुरूते, यो लोकं पराश्रयिणं परोपजीविनं परमुखापेक्षिण×च विधन्ते। .....
निवार्णं न तिष्ठति दायित्वनिवृत्तौ। निर्वाणं विलसति दायित्वसम्पादने यदर्थं प×चयज्ञाः समुपदिष्टाः। कर्ममयीयं सृष्टिः। देवा अपि नितरां कर्मरताः। सूर्यस्तपति प्रतिक्षणं चन्द्र आह्लादयति प्रतिक्षणम्। अग्निर्ज्वलयत्यहोरात्रम्। प्रवहति वातस्सततमेव। सर्वात्मा त्रिगुणात्मा सर्वदेवमयो हरिरपि न तिष्ठत्यकर्मकृत् क्षणमपि। इदमेव सृष्टिरहस्यम्। इदमेव यज्ञरहस्यम्।'[5]

सनातन वैदिक धर्म, भारतीय विश्ववरेण्यसंस्कृति एव परमपिता परमेश्वर से द्वेष वही मनुष्य कर सकता है, जो इनके वास्तविक स्वरूप एवं महत्ता से अपिरचित है। वह परमशक्तिमान् परमात्मा ही सृष्टि का कारक, पालक एवं संहारक है। उसी से संसार का जन्म हुआ है, उसी में यह संसार है और उसी तक यह संसार है। उस सर्व शक्तिमान् परमात्मा तक पंहुचने का मार्ग कर्म ही है। श्रीमद्भगवदगीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है–

'न कर्मणामनारम्भानैष्कर्म्यं पुरूषोऽश्नुते।
न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति'[6]

कृष्ण यह भी कहते हैं –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।'[7]

इसी तथ्य को कवि बाणभट्ट से कहलवाते हैं– 'राजन्! विद्वेक्षि तं शाश्वतं सनातनं वेदधर्मं यो विनिर्ममें विश्ववारासंस्कृतिम्। विद्वेक्षि तं जगदीश्वरं यः प्रजानां जन्मनि रजोजुट्, परिपालने सत्त्ववृत्ति, प्रलये च तमः स्पृक् परिलक्ष्यते। विद्वेक्षि तं परमेश्वरं यतोऽयं निसर्गः यस्मिन्नयं निसर्गः यदवध्ययं निसर्गः?'[8]

स्पष्ट है कि कविवर वैदिक धर्म, वेद्वान्त के अद्वैतदर्शन, उपनिषद् एवं कर्मयोगीश्वर श्रीकृष्ण के कर्मवाद में असीम श्रद्धा, आसक्ति एवं निष्ठा धारण करते है। किसी भी स्थिति में अकर्मण्यता, पलायनवाद, वन्यगुफाओं में रहकर आत्ममुक्ति के लिए प्रयास, भिक्षुकत्व, वेदनिन्दा, अनास्था के मार्ग का वे समर्थन नही करते। पुरूषार्थहीनता का वे दृढ़ता से विरोध करते हैं।

कवि कहते हैं 'नात्मानमवसादयेत्'[9]। पुनर्नवा में कृष्णा के पिता के द्वारा जन सामान्य को उपदेश देते हैं कि अर्जुन की तरह द्वन्द्व के समय मोहविद्ध न हो जाएं–'पार्थ इव क्वचिन्मध्येमार्गं भूयोऽपि मोहविद्धो न भवेयम्।'[10]

चित्रपर्णी की छोटी–छोटी कहानियों में भी धर्म के आडम्बर एवं विकारों पर प्रहार किया है। छागबलिः, ऊर्ध्वरेता जैसी कहानियां पाखण्ड पर प्रहार करते हुए समाज को नई गति प्रदान करने का प्रयत्न है।

निष्कर्ष

समसामयिक समाज में जहां धर्म में आडम्बर एवं पाखण्ड की पराकाष्ठा हो गई है। धर्म के ठेकेदार धर्म की दुकानें खोल कर बैठ गए हैं, धर्म एक व्यवसाय बन गया है। युधिष्ठिर द्वारा संकेतित 'दम्भ धर्मध्वजोच्छ्रयः' में निहित धर्म में दम्भ सर्वत्र विराजमान है। सभी अपने–अपने धर्म का ध्वज लेकर चल रहे हैं। वस्तुतः यह पूर्णतः पाखण्ड

का काल है। लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूल गए हैं। धर्म के नाम पर हिंसा, आतंक, वर्गभेद, वर्गसंघर्ष बढ़ रहा है। ऐसे में शास्त्रों में प्रतिपादित धर्म की परिभाषा, लक्षण, विशिष्टताओं एवं स्वरूप से सामान्य मनुष्य को परिचित करवाना, माँ सरस्वती के वरद पुत्रों का पुनीत कर्त्तव्य है और कविवर वही कर रहे हैं। अनाख्याता बाणभट्टाऽत्मकथा एवं पुनर्नवा में मुख्य रूप से उन्होनें अन्धानुकरण एवं रूढिवादिता पर प्रहार करते हुए निष्काम कर्मयोग से आत्मकल्याण एवं सृष्टि के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। निश्चित ही धर्म की यह शिक्षा, सनातन वैदिक धर्म का यह नूतन दृष्टिकोण नितान्त प्रासंगिक एवं कल्याणकारी है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–134*
2. *अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–134*
3. *नारायणपण्डित, हितोपदेश, 1/69*
4. *अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–135*
5. *अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–134*
6. *श्रीमद्भगवद्गीता, 2/4*
7. *श्रीमद्भगवद्गीता, 2/47*
8. *अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–135*
9. *अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–134*
10. *अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–131*